International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 31-03-2026, Accepted: 01-05-2026, Published: 16-05-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 116-119

डॉ. भारिल्ल का साहित्य और गांधीगिरि

डॉ. मनीष कुमार जैन
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री कुन्द कुन्द जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, खतौली, मुज़फ्फरनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
"डॉ. भारिल्ल और गांधीगिरि" डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व और उनकी कार्यशैली पर महात्मा गांधी के प्रभाव का अत्यंत मौलिक और विचारोत्तेजक है। सामान्यतः डॉ. भारिल्ल को एक आध्यात्मिक मनीषी और कानजी स्वामी के सिद्धांतों के व्याख्याता के रूप में देखा जाता है, परंतु आपने उनके 'साधन की पवित्रता' वाले पक्ष को गांधीजी के सत्याग्रह से जोड़कर एक नया आयाम प्रस्तुत किया है।
गांधीजी की तरह डॉ. भारिल्ल का भी यह अटूट विश्वास रहा है कि यदि हमारा साध्य महान है, तो उसे प्राप्त करने का साधन भी उतना ही पवित्र होना चाहिए। आपने सही रेखांकित किया है कि उन्होंने विरोधियों को नहीं, बल्कि विरोध (अज्ञान) को समाप्त करने पर बल दिया। उनका यह कहना कि "हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है" गांधीवादी अहिंसा का आध्यात्मिक संस्करण है।
अक्सर धार्मिक संस्थाओं में संगठन को बचाने के लिए सत्य से समझौते कर लिए जाते हैं, लेकिन डॉ. भारिल्ल की स्पष्ट नीति रही है कि सत्य की कीमत पर संगठन नहीं और संगठन की कीमत पर सत्य नहीं। यह निर्भीकता उन्हें गांधीजी के उस सत्य के प्रयोग के करीब खड़ा करती है जहाँ सत्य ही ईश्वर है।
नागपुर (1987) के प्रसंग में उन्होंने जिस तरह पीली पट्टी बाँधने, सामूहिक उपवास और प्रार्थना सभाओं की रूपरेखा तैयार की, वह पूरी तरह से गांधीजी के सविनय अवज्ञा आंदोलन की याद दिलाती है। यहाँ पीली पट्टी शांति और विरोध का अद्भुत समन्वय थी, जो बिना किसी हिंसा के अपनी बात दृढ़ता से रखने का माध्यम बनी।
डॉ. भारिल्ल ने उनका मानना है कि किसी को दबाकर या हराकर प्राप्त की गई विजय वास्तविक नहीं है, सच्ची विजय वह है जहाँ विरोधी का हृदय परिवर्तित होकर सत्य के प्रति समर्पित हो जाए।
लेख में यह तुलना बहुत सटीक है कि जिस तरह गांधीजी को अंग्रेजों और अपनों दोनों से लड़ना पड़ा, वैसे ही डॉ. भारिल्ल को भी बाहरी विरोधियों और अपने ही समूह के उन लोगों से जूझना पड़ा जो उनकी समन्वयकारी और शांतिपूर्ण नीति को शिथिलता या कायरता समझते थे।
लेख यह सिद्ध करता है कि डॉ. भारिल्ल केवल शब्दों के जादूगर नहीं, बल्कि क्रियात्मक अध्यात्म के संवाहक थे। उन्होंने सिद्ध किया कि जैन धर्म का अनेकांत और अहिंसा केवल शास्त्रों की वस्तु नहीं है, बल्कि इन्हें आधुनिक सामाजिक–धार्मिक आंदोलनों में हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है।

मूल शब्दः भारिल्ल, महात्मा गांधी, कानजी स्वामी, गांधीगिरि, जैन दर्शन, आध्यात्मिक मनीषी, सिद्धांत, मूल्य, साधन की पवित्रता, सत्याग्रह, अहिंसा, अनेकांतवाद, ईश्वर, हृदय परिवर्तन, क्रियात्मक अध्यात्म, समन्वयकारी नीति, आंदोलन और कार्यशैली, सविनय अवज्ञा आंदोलन, शांतिपूर्ण विरोध, पीली पट्टी विरोध, सामूहिक उपवास और प्रार्थना, सत्य के प्रयोग

प्रस्तावना

सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह — ये शब्द अमूमन राजनीतिक स्वतंत्रता या सामाजिक आंदोलनों के संदर्भ में ही याद किए जाते हैं। किंतु प्रस्तुत आलेख इस सीमित धारणा को तोड़ते हुए एक अत्यंत गहरा और प्रेरक विमर्श प्रस्तुत करता है। यह आलेख राजनीतिक जगत के महानायक महात्मा गांधी और जैन अध्यात्म जगत के प्रखर विद्वान डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के जीवन–दर्शन के बीच एक अद्भुत और वैचारिक सेतु का निर्माण करता है।
जहाँ एक ओर महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा को अस्त्र बनाकर भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराया, वहीं दूसरी ओर डॉ. भारिल्ल ने इन्हीं नीतियों को 'वीतरागवाणी' (जिनवाणी) के प्रचार–प्रसार और आत्मा की स्वतंत्रता के उद्घोष का आधार बनाया। दोनों ही महापुरुषों की कार्यभूमि भले ही अलग रही हो, किंतु दोनों का अंतिम लक्ष्य एक ही था— अज्ञान व दुराग्रह का शमन और सत्य की स्थापना।
यह लेख इस तथ्य का एक सजीव दस्तावेज़ है कि जब लक्ष्य (साध्य) महान हो, तो उसे प्राप्त करने के साधन भी उतने ही पवित्र और गरिमामय होने चाहिए। अपने ही समाज के भारी विरोध, भ्रांतियों और संघर्षों के बीच डॉ. भारिल्ल ने कभी भी प्रतिकार या कटुता का मार्ग नहीं चुना। इसके बजाय, उन्होंने गांधी जी की भाँति 'हृदय परिवर्तन' और 'सत्य के उद्घाटन' को अपना मार्गदर्शक बनाया।
प्रस्तुत आलेख इस बात की एक सार्थक और भावपूर्ण मीमांसा है कि किस प्रकार आध्यात्मिक और वैचारिक मतभेदों को भी बिना लड़े, केवल असीम धैर्य, करुणा और सत्याग्रह के माध्यम से सुलझाया जा सकता है। यह केवल दो महान व्यक्तित्वों की तुलना नहीं है, बल्कि विरोध के बीच भी शांति और सिद्धांतों पर अडिग रहने की एक प्रेरणादायक गाथा है।

आलेख

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल जैन अध्यात्मजगत के लोकप्रिय व्यक्तित्व हैं, किन्तु हिन्दी साहित्य में भी उनकी रचनाएँ आदर से पढ़ी जातीं हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आत्मकथा, अनुवाद आदि सभी विधाओं में उनका रचना–संसार फैला हुआ है। अध्यात्मजगत में उन्हें बहुत विरोध का सामना करना पड़ा। आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के शिष्य होने से विरोध का माहौल उन्हें विरासत में मिला। विरोध के मुश्किल हालातों में भी अध्यात्म के प्रचार–प्रसार जैसे नाजुक कार्य में गांधीजी के सत्याग्रह व अहिंसात्मक आचरण को उन्होंने अपना हथियार बनाया। यद्यपि गांधीजी की निजी दार्शनिक विचारधाराओं से इनका कोई सरोकार नहीं है, फिर भी उनके सत्य–अहिंसात्मक आंदोलन ने डॉ. भारिल्ल की कार्यशैली पर गहरा प्रभाव डाला।
महात्मा गांधी और कानजीस्वामी का संसार बिल्कुल अलग–अलग था। बावजूद इसमें दोनों ही महापुरुषों का अन्तिम उद्देश्य

दृश्यमान जगत नहीं है। दोनों के जीवन का अन्तिम लक्ष्य तो आध्यात्मिक सत्य की प्राप्ति एवं साधना था; किन्तु आंख बंद कर संसार से निरपेक्ष रहकर एकान्तिक साधना में वे कैद न रह सके और निकल पड़े वहाँ, जहाँ कुत्सित स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं।

काठियावाड़ की रत्नगर्भा भूमि के इन दोनों रत्नों में एक ने देश को स्वतंत्र कराया तो दूसरे ने परमाणु–परमाणु की स्वतंत्रता का शंखनाद किया। दोनों महापुरुषों के आंदोलन में अनेक विडम्बनाएँ थीं। गांधीजी को दो शक्तियों से लड़ना था। पहली बाहरी और दूसरी भीतरी। बाहरी शक्ति अंग्रेज थे। दूसरी शक्ति हमारे ही भाई थे जो गांधीजी की सत्य–अहिंसा की नीति को कायरों का हथियार मानते थे।

दोनों विद्वानों की विचारधाराएँ इस युग के लिए बिल्कुल नई थीं। विचारधाराओं के इसी संघर्ष में दोनों ने अपना काम किया। दोनों के प्रयास इस सत्य के दस्तावेज हैं कि साध्य महान है तो साधन भी उसी गरिमा के अनुकूल होना चाहिए। वे किसी व्यक्ति को दानव के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसके भीतर दबे हुए दुराग्रह, अज्ञान, उच्छृंखलता को ही वे दानवी प्रवृति मानते हैं। उनका संपूर्ण प्रयास इन्हीं दानवीय तत्वों के विरुद्ध है। डॉ. भारिल की उपन्यास 'सत्य की खोज' में समागत अंश देखिए –

''अरे भाई! हमें विरोधियों को नहीं, विरोध को समाप्त करना है। अज्ञान के कारण जो अभी तक तत्त्व का, सत्य का विरोध करते थे; वे सब भूले–भटके हमारे भाई ही तो हैं।''[1]

'सत्य की खोज' में विवेक की नीतियाँ उपन्यासकार की ही अपनी नीतियाँ हैं। 'आत्मधर्म' एवं 'वीतराग–विज्ञान' की संपादकियों में भयंकर विरोध के बावजूद जिस आत्म–विश्वास से उन्होंने अपनी रीति–नीति का औचित्य सिद्ध किया है; वह एक बेशकीमती धरोहर है।

डॉ. भारिल्ल के हृदय की धड़कनें जिसने समझ ली, वह कुछ क्षणों के लिए महात्मा गाँधी और डॉ. भारिल्ल के द्वैत को भूल जायेगा; वहाँ गांधीजी और डॉ. भारिल्ल मिलकर एक हो गये हैं। सत्य की कीमत पर वे तनिक भी झुकने तैयार नहीं हैं। उनकी स्पष्ट नीति थी– ''वस्तु के स्वरूप को समझ की आवश्यकता है, समझौते की नहीं। वस्तु के स्वरूप में समझौते की गुजाइश भी कहाँ है और उसके संबंध में समझौता करने वाले हम होते भी कौन हैं। समझौते में दोनों पक्षों को झुकना पड़ता है। समझौते का आधार सत्य नहीं, शक्ति होती है।''[2]

वे सत्य को संगठन से भी ऊपर देखते थे –

''मैं सत्य का उद्‌घाटन करूँगा और संगठन भी कायम रखूँगा। मेरे द्वारा न तो सत्य की कीमत पर संगठन होगा और न संगठन की कीमत पर सत्य ही छोड़ा जायेगा।''[3]

गाँधीजी के निजी धार्मिक विचारों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। थोड़ी देर के लिए हमें उनकी उन नीतियों को समझना पड़ेगा, जिनका असर सीधा डॉ. भारिल्ल पर पड़ा। विश्व में गाँधीजी को दार्शनिक के तौर पर नहीं बल्कि सत्य–अहिंसा पर आधारित हिन्दुस्तान की आजादी के लिए याद किया जाता है। इतिहास व राजनीति की हजारों पुस्तके खोलकर देख लीजिए; क्या किसी इतिहास–वेत्ता व राजनीतिक चिंतक ने सत्ता परिवर्तन व राज्य की प्रवृतियों में सत्य–अहिंसा का नामोल्लेख भी किया हो। यहाँ तक कि अधिकांश राजनीतिक चितकों ने तो इन तत्त्वों को राजनीति में बाधक तत्व माना। कभी किसी ने कल्पना में भी नहीं सोचा था कि सत्य और अहिंसा के बल पर भी तख्ता–पलट की कार्यवाही हो सकती है। इस अर्थ में गांधीजी एक आविष्कारक थे। उन्होंने आजादी के लिए ही नहीं, अपितु सत्य–अहिंसा को जीवन के सर्वांगीण रूप में देखा। सत्य उनके लिए लक्ष्य था और अहिंसा उसकी प्राप्ति का साधन।

''असहयोग, कानून का सविनय भंग और सत्याग्रह इन कदमों की मदद से गांधीजी ने स्वराज्य का रास्ता तय किया। इसे हम चमत्कारपूर्ण घटना का त्रिविक्रम कह सकते हैं।''[4]

गाँधीजी का संपूर्ण प्रयत्न आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना के लिए था, लेकिन हिन्दुस्तान में उन्होंने जो ''स्वराज्य का आन्दोलन चलाया, कांग्रेस जैसी राजनीतिक राष्ट्रीय संस्था का मार्गदर्शन किया; वह उनकी प्रवृत्ति पार्लियामेन्टरी स्वराज्य के लिए ही थी। स्वराज्य के लिए उन्होंने अन्याय और शोषण का, और परदेशी सरकार का निषेध करने में अहिंसा का सहारा लिया जाय, इतना ही आग्रह रखा।''[5]

डॉ. भारिल्ल का उद्देश्य आध्यात्मिक सत्य की स्थापना ही है। वह स्थापना वे पूरे संसार में करना चाहते हैं। उनके सामने सिद्धान्तों को ताक पर रखे बिना, शान्ति की स्थापना की जिम्मेदारी आन पड़ी है। वे लिखते हैं –

''किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए शांति और प्रेम का रास्ता यद्यपि लम्बा रास्ता है; इसमें प्रतिद्वन्दी को नहीं, उसके हृदय को जीतना पड़ता है; जीतकर उसे समाप्त नहीं किया जाता, अपितु अपना बनाया जाता है; तथापि टिकाऊ और वास्तविक सफलता प्राप्त करने का एक मात्र रास्ता यही है। इसमें असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति में तो इतना धैर्य होता ही नहीं कि वह इतनी प्रतीक्षा कर सके – यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों द्वारा महान कार्य सम्पन्न नहीं हो पाते।''[6]

गाँधीजी को अंग्रेजों के समानान्तर, हिन्दुस्तानियों का भी विरोध झेलना पड़ा। गाँधीजी इन सबसे अप्रभावित रहे। यदि हिन्दुस्तान की जनता भी कोई गलत कार्य करती तो वे उसकी भी निंदा करते। फरवरी 1922 में जब आन्दोलनकारियों ने चोराचोरी में एक पुलिस चौकी को जला दिया तो गाँधीजी ने अपना आन्दोलन तत्काल वापिस ले लिया; क्योंकि वे हिंसा के बल पर आजादी नहीं चाहते थे। हिंसा के बल पर यदि आजादी मिलती है तो हिंसा के प्रति जो आस्था लोगों के अंदर बैठ जायेगी; वह आस्था परतंत्रता से भी अधिक खतरनाक होगी। गांधीजी की इस नीति का डॉ. भारिल्ल पर गहरा असर हुआ। वे लिखते हैं ''भाई प्रतिकार का रास्ता उचित नहीं। प्रतिकार का रास्ता विघटन की ओर ले जाता है।''[7] ''विवेकी जीव यथासंभव संघर्ष को टालने में अपनी जीत समझते हैं।''[8] गलतफहमियों से उत्पन्न आपसी समस्याओं को यदि हम आमने–सामने बैठकर निपटा लें तो व्यर्थ के संघर्षों से बहुत कुछ बच सकते हैं। तथा विनाशक युद्धों को अहिंसात्मक प्रतियोगिताओं में बदलकर विश्व को विनाश से बचाये रख सकते हैं।''[9]

डॉ. भारिल्ल बलात किसी को बदलने में विश्वास नहीं रखते। उनका विश्वास हृदय परिवर्तन में है। वे गलत काम की निन्दा करते हैं, चाहे वह हमारे पक्षवालों से हो, चाहे विपक्ष वालों से। उनकी नीतियों में सत्य का मुखर आग्रह है। वे लिखते हैं ''किसी का भंडाफोड करना, यह तत्त्वज्ञान के प्रचार का सही रास्ता नहीं। यह तो नकारात्मक मार्ग है। यह रचनात्मक मार्ग नहीं। रचनात्मक मार्ग तो सत्य का उद्‌घाटन करना है न कि उसका फंडाफोड। सत्य का उद्‌घाटन सत्य को समझना ही है।''[10] ''सबको प्रेम से गले लगाने में ही सच्ची विजय है। विरोधियों का बिखर जाना कोई विजय नहीं। विरोध का समाप्त हो जाना भी पूरी विजय नहीं अपितु सबका सत्य के प्रति प्रेम, तत्त्व के प्रति प्रेम हो जाना ही सच्ची विजय है।''[11] ''धर्म का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि उसके नाम पर रक्तपात हुआ और उस रक्तपात के कारण वह धर्म विश्व में घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। जिस धर्मतत्त्व के प्रचार के लिए हिंसा अपनाई गई, वही हिंसा उसके ह्रास का कारण बनी।''[12]

गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो हमें दूसरा गाल बढ़ा देना चाहिए, गांधीजी के इस कथन की बहुत खिल्ली उड़ाई जाती है; किन्तु इसमें छुपे निहितार्थ को आन्दोलन के परिपेक्ष्य में किसी ने समझने की कोशिश नहीं की। दरअसल हिन्दुस्तानी आपस में लड़ रहे थे। ऐसी स्थिति में गांधीजी ने कहा कि आपस में

झगड़ना बंद करो और मिल कर अंग्रेजों से लड़ो। ये उनको चॉटे वाली बात का निहितार्थ था।

डॉ. भारिल्ल इसी सत्य को दूसरे शब्दों में कहते हैं– ''गोली का जवाब गोली से देना तो बहुत दूर, हमें तो गोली का जवाब गाली से भी नहीं देना है। ऐसा पाप हमसे तो नहीं होगा।''[13] ''हम न तो किसी की निन्दा करते हैं और न लड़ाई–झगड़ा करते हैं। हम तो शान्ति चाहते हैं।''[14]

नागपुर में सन् 1987 में शास्त्रों के अपमान के प्रसंग पर डॉ. भारिल्ल ने उस माहौल में स्थिति को कैसे संभाला –

''समाज का स्नेह, हम उनसे हाथ जोड़कर प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। हमें उनका स्नेह मिलेगा तो हम पूरे संकल्प के साथ उनके साथ रहेंगे और नहीं मिलेगा तो जिनवाणी की आराधना करना तो हम छोड़ेंगे नहीं।''[15] ''हम तो जो हमारे भाई हैं, उनका हृदय परिवर्तन बाहते हैं। वे हमें प्रेम से बुलावें और हम प्रेम से जायें – यही हमारा रास्ता है। उसमें भले ही थोड़ी देर लग सकती है, लेकिन अंधेर नहीं हो सकता।''[16]

इस प्रसंग में जिनवाणी की सुरक्षा और सामाजिक एकता आन्दोलन की यह रूपरेखा देखिए, जहाँ साध्य की गरिमा के अनुरूप साधन की पवित्रता पूरे गौरव के साथ उपस्थित है। यहाँ डॉ. भारिल्ल गांधीजी के उपवास, प्रार्थना सभा आदि के फार्मूले को नये रूप में प्रस्तुत करते हैं–

''हमारे इस जिनवाणी की सुरक्षा एवं सामाजिक एकता आन्दोलन के तीन चरण होंगे– प्रथम चरण में हम इस शान्तिप्रिय आन्दोलन में भाग लेने वाले कम–से–कम दस हजार कार्यकर्ताओं के संकल्प पत्र भरेंगे। दूसरे चरण में अपनी शान्ति प्रार्थनाएँ आरंभ करेंगे। यदि आवश्यकता हुई तो हम सामूहिक उपवास के तृतीय चरण में प्रवेश करेंगे। तृतीय चरण में जहाँ तक संभव हो जिनमंदिर में अन्यथा स्वाध्याय भवन, धर्मशाला या सार्वजनिक स्थान पर एक दिन का उपवास करेंगे।''[17] ''उत्तेजना उत्पन्न करने वाली चर्चा नहीं करेंगे।''[18] ''संपूर्ण कार्यक्रम में हाथ पर पीली पट्टी अवश्य बाँधेंगे।''[19] ''हमारे इस आन्दोलन का पवित्र उद्देश्य प्रार्थना सभाओं एवं सामूहिक उपवासों द्वारा हम सभी साधर्मी बन्धुओं के हृदय को निर्मल करना है, अपनी निर्मल भावना को सशक्त ढंग से सभी साधर्मियों तक पहुँचाना है।''[20]

यद्यपि डॉ. भारिल्ल की ये पंक्तियाँ प्रसंग विशेष पर आयी हैं, किन्तु यह उनकी तात्कालिक नहीं, प्रायः स्थायी नीति है। सत्याग्रह और अहिंसात्मक आन्दोलन को जब लोगों ने कायर करार दिया था तो उस समय गांधीजी ने कहा था कि –

''सत्याग्रह सबसे बड़ा बल है। यह तोपबल से ज्यादा काम का है तो फिर कमजोरों का हथियार कैसे माना जायेगा? सत्याग्रह के लिए जो हिम्मत और बहादुरी चाहिए, वह तोपबल का बल रखने वाले के पास नहीं हो सकती।''[21] ''तोप चलाकर सैकड़ों को मारने में हिम्मत की जरूरत है या हँसते–हँसते तोप के मुँह पर बंध कर धज्जियाँ उड़ने देने में हिम्मत की जरूरत है?''[22] ''यह निश्चित मानिये कि नामर्द आदमी कभी सत्याग्रही नहीं हो सकता। हाँ यह सही है कि शरीर से दुबला हो, वह भी सत्याग्रही हो सकता है।''[23] बच्चे, बूढे, औरतें सभी सत्याग्रही हो सकते हैं। इसमें शरीर बल की नहीं, सत्य के बल की आवश्यकता होती है। यह बल जिसके पास है, वह कायर कैसे हो सकता है?

डॉ. भारिल्ल की रीति–नीति पर भी कदाचित् कायरता का आरोप लगाया गया; किन्तु उनको इसकी परवाह नहीं। ''क्या नहीं लड़ना कायरता है और लड़ना वीरता? यदि वीरता झगड़ालूपन का नाम है और शान्तिप्रियता का नाम कायरता है, तो मैं कायर ही भला। ऐसी वीरता मुझे नहीं चाहिए। तत्त्व का प्रचार लड़कर नहीं किया जा सकता।''[24]

यद्यपि यह सच है कि डॉ. भारिल्ल की रीति–नीति में जो कोमलता है, उसमें कानजीस्वामी का स्पंदन है; किन्तु एक–दो स्थानों पर तो उन्होंने स्वयं गांधीजी का नाम लेकर अपनी नीतियों को मजबूती दी। ये बात लिखते हुए बहुत पीड़ा होती है कि महात्मा गांधी व डॉ. भारिल्ल जिस आध्यात्मिक स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे, वह उस मात्रा में नहीं हो सकी। यहाँ तक कि न चाहते हुए भी देश में शान्ति के खातिर देश–विभाजन की त्रासदी गांधीजी को झेलनी पड़ी। विभाजन की महापीड़ा गांधीजी को भीतर से तोड़ने के लिए काफी थी।

डॉ. भारिल्ल का भी एकमात्र उद्देश्य बिना किसी निन्दा–प्रशंसा के तत्त्वज्ञान का प्रचार–प्रसार करना है। उन्होंने कभी नहीं चाहा कि हम समाज से अलग हों, समाज दो ध्रुवों में बंटे; लेकिन जब स्थिति ये बनी कि प्रचार के चक्र में हमें अपनी ही साधना में बाधा आने लगी, प्राणों से प्रिय जिनवाणी का निरादर होने लगा तो डॉ. भारिल्ल को दिल पर पहाड़ जैसा पत्थर रखकर लिखना पड़ा –

''किसी कंटक को समाप्त करने की बात हम तो सोच भी नहीं सकते। हम तो बहुत–से–बहुत आगे बढ़ेंगे तो यह सोच सकते हैं कि यदि समाज में शान्ति से रहकर हम अपनी धर्मसाधना, साहित्य की आराधना और स्वाध्याय नहीं करन सकते तो अलग बैठकर स्वाध्याय करेंगे।''[25]

''सत्य की प्राप्ति के लिए समस्त जगत से कटकर रहना आवश्यक है। इसके विपरीत सत्य के प्रचार के लिए जनसंपर्क जरूरी है।''[26] डॉ. भारिल्ल की जनसंपर्क वाली नीति आज भी बरकरार है, किन्तु कतिपय लोग उनकी इस नीति को पसंद नहीं करते। अतः उनका संघर्ष भी गांधीजी की तरह दुतरफा है। एक अपनों से, दूसरा बाहरी शक्तियों से।

अंत में डॉ. भारिल्ल द्वारा भीगे हृदय से समाज की गई अपील को उन्हीं के शब्दों में लिखकर मैं विदा लेता हूँ –

''तात्त्विक विवादों से बचने का एक मात्र उपाय जिनवाणी का गहराई से स्वाध्याय करना ही है।''[27] ''संपूर्ण जगत जितना बन सके जिनवाणी का अभ्यास करे; क्योंकि सच्चे सुख और शांतिमार्गदर्शक यह नित्यबोधक वीतरागवाणी ही है, जिनवाणी ही है।''[28] ''विषय–कषाय, व्यापार–धंधा और व्यर्थ के वाद–विवादों से समय निकालकर वीतरागवाणी का अध्ययन करो, मनन करो, चिंतन करो; बन सके तो दूसरों को भी पढ़ाओ, पढ़ने की प्रेरणा दो, इसे जन–जन तक पहुँचाओ, घर–घर में बसाओ। स्वयं न कर सको तो यह काम करने वालों को सहयोग अवश्य करो। वह भी न कर सको तो कम–से–कम इस भले काम की अनुमोदना ही करो। बुरी होनहार से यह भी संभव न हो तो कम–से–कम इसके विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ। इस काम में लगे लोगों की टाँग तो मत खींचो, इसके अध्ययन–मनन को निरर्थक तो मत बताओ। इसके विरुद्ध वातावरण तो मत बनाओ। यदि आप इस महान कार्य को नहीं कर सकते, करने के लिए लोगों को प्रेरणा नहीं दे सकते तो कम–से–कम इस कार्य में लगे लोगों को निरुत्साहित तो मत करो, उनकी खिल्ली तो मत उड़ाओ। आपका इतना सहयोग ही हमें पर्याप्त होगा।''[29]

उपसंहार

यह कहा जा सकता है कि सत्य और अहिंसा केवल राजनीतिक क्रांतियों के अस्त्र नहीं हैं, बल्कि ये वैचारिक और आध्यात्मिक साधना के भी सबसे सशक्त आधार हैं। महात्मा गांधी और डॉ. हुकमचंद भारिल्ल के जीवन–दर्शन का यह तुलनात्मक अध्ययन हमें यह स्पष्ट रूप से सिखाता है कि सच्ची विजय विरोधियों को मिटाने में नहीं, बल्कि उनके भीतर बैठे 'विरोध' और 'अज्ञान' को मिटाकर उनका हृदय परिवर्तन करने में है।

डॉ. भारिल्ल ने जिस प्रकार भयंकर विरोध, आलोचनाओं और सामाजिक झंझावातों के बीच भी 'वीतरागवाणी' (जिनवाणी) के प्रचार–प्रसार के अपने संकल्प को अखंडित रखा, वह उनकी असीम सहनशीलता और सत्य के प्रति अडिग निष्ठा का प्रमाण है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि बिना किसी से लड़े, बिना

किसी की निंदा किए और केवल असीम धैर्य व प्रेम के मार्ग पर चलकर ही समाज में आध्यात्मिक शांति स्थापित की जा सकती है।

अंततः, इस आलेख का मूल स्वर और संदेश यही है कि वैचारिक मतभेदों को कभी भी कटुता या विघटन का कारण नहीं बनना चाहिए। समाज और व्यक्ति दोनों की भलाई इसी में है कि हम व्यर्थ के वाद–विवादों और कषायों से खुद को दूर रखें और सत्य (जिनवाणी) का गहराई से अध्ययन–मनन करें। यदि हम स्वयं इस महान आध्यात्मिक कार्य को करने में असमर्थ हैं, तो कम–से–कम इसे करने वालों का सहयोग करें और उनके मार्ग में बाधा न बनें। यही सच्ची अहिंसा है और यही वीतराग मार्ग का वास्तविक मर्म है।

संदर्भ

1. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 241
2. धर्म के लक्षण: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 81
3. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 118
4. हिन्द स्वराज (दो शब्द–काका कालेलकर): गांधीजी: प्रथम संस्करण 1949: नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद–14, पृष्ठ क्र. – 06
5. वही, पृष्ठ क्र. – 08
6. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 247
7. बिखरे मोती: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 263
8. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 16
9. गोम्मटेश्वर बाहुबली: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 16
10. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 64
11. वही, पृष्ठ क्र. – 235
12. मैं कौन हूँ: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 64
13. बिखरे मोती: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 179
14. वही, पृष्ठ क्र. – 189
15. वही, पृष्ठ क्र. – 171
16. वही, पृष्ठ क्र. – 180
17. वही, पृष्ठ क्र. – 160, 161
18. वही, पृष्ठ क्र. – 162
19. वही, पृष्ठ क्र. – 161
20. वही, पृष्ठ क्र. – 162
21. हिन्द स्वराज: गांधीजी: प्रथम संस्करण 1949: नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद–14, पृष्ठ क्र. – 64
22. वही, पृष्ठ क्र. – 64
23. वही, पृष्ठ क्र. – 23
24. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 116
25. बिखरे मोती: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 177
26. सत्य की खोज: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: उन्नीसवॉ संस्करण 2016: पृष्ठ क्र. – 142
27. निमित्तोपादान: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 23
28. परमभाव प्रकाशक नयचक्र: डॉ. हुकमचंद भारिल्ल: पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर: प्रथम संस्करण: पृष्ठ क्र. – 183
29. वही, पृष्ठ क्र. – 184